माता भगवती भोजनालय की दिव्यता

महाशक्ति की लोकयात्रा

अपने बच्चों को संस्कारवान बनाने के लिए माताजी हमेशा प्रयत्नशील रहती थीं। गायत्री तपोभूमि व अखण्ड ज्योति संस्थान में रहने वाले, काम करने वाले और आने-जाने वाले सभी उनके बच्चे थे। वह सभी की अपनी सगी मां थीं। मां कौन होती है? इसके बारे में उनकी अपनी मौलिक दृष्टि थी। बातचीत में कहा करती थीं,

"जन्म देने वाली जननी होती है, लेकिन जो संतान को संस्कार देती है, उसके जीवन को संवारने के लिए हर पल, हर क्षण प्रयत्नशील रहती है, वही मां है। अपने बच्चों को ऊंचा उठाने के लिए, उन्हें आगे बढ़ाने के लिए, उनके आंतरिक विकास के लिए मां दिन-रात जुटी रहती है। उत्तम संस्कारों के बीजारोपण से ही मनुष्य का जीवन

सही मायने में संवरता है। इसी से माता की मातृत्व साधना की सफलता प्रमाणित होती है।"

वे कहती थीं,

"बेटा, मैं तुम सब की जननी तो नहीं, पर तुममें से हर एक को अच्छे संस्कार देने वाली तुम्हारी सच्ची मां हूं।"

अपने कथन के अनुरूप वह हर समय इसके लिए कोशिश करती रहती थीं। बात-व्यवहार में, उनके संपर्क के प्रत्येक आयाम में यह सत्य प्रकट होता था। उनके द्वारा कराए जाने वाले भोजन में इसकी सबसे अधिक सघनता रहती थी । परमपूज्य गुरुदेव इस बात को परिजनों से, कार्यकर्त्ताओं से जब-तब बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कह देते थे। वे कहते,

"तुम लोग माताजी को साधारण न समझो। वे शक्तिस्वरूपा हैं, महाशक्ति हैं। अपने आध्यात्मिक ऐश्वर्य को छिपाकर बड़े ही सामान्य ढंग से रहा करती हैं। उन्हें पहचानना, उनको सही ढंग से समझ पाना आसान काम नहीं है। वे तुम लोगों के लिए जितना आसानी से कर देती हैं, उतना तो मैं भी नहीं कर सकता। पता नहीं, तुम इस सचाई को कितना समझ पाते हो, पर सत्य यही है

कि उनके संपर्क मात्र से पूर्वजन्मों के कषाय-कल्मषों, कलुषित संस्कारों का नाश होता है, व्यक्तित्व में नए दिव्य संस्कारों के बीज रोपित होते हैं।"

इस क्रम में परमपूज्य गुरुदेव और भी बहुत कुछ बताया करते थे। वे कहते,

“माताजी का भोजन दिखने भर में सादा और साधारण है, लेकिन तुम लोग इसे कभी साधारण समझने की भूल मत करना। इसमें उनकी असाधारण प्राण ऊर्जा समाई रहती है। यह पेट को तृप्त करने के साथ आत्मा तक को तृप्त करने वाला तत्त्व है। तुम लोगों को अनुदान देने के, तुम सबको संस्कारवान बनाने के, उनके तरीके बड़े अद्भुत हैं। वे कब, क्या और किस ढंग से करती हैं, इसे सही-सही वे ही जानती हैं, लेकिन यह बात सौ टका सच है कि उनके चौके का भोजन, उनके द्वारा किए जाने वाले शक्ति संप्रेषण(driving force) का, दिव्य संस्कारों के बीजारोपण का सबसे समर्थ माध्यम है। यह उनके द्वारा अपनाई जाने वाली बड़ी ही प्रिय विधि है।”

माताजी के चौके में हजारों-लाखों लोगों ने भोजन किया होगा, उनके संपर्क में शायद इससे भी अधिक लोग आए होंगे,लेकिन इस उपर्युक्त सच (आत्मा को तृप्त करने वाला सच) को बहुत कम ही लोग समझ पाए होंगे। हां, बुद्धि से न समझ पाने के बावजूद इसकी भावानुभूति ज़रूर बहुतों ने पाई होगी। कभी-कभी तो यह अनुभूति इतनी प्रगाढ़ होती थी कि अनुभव करने वाला इसे बताए बिना न रह पाता था। इसके बखान से ही उसे संतुष्टि और संतृप्ति मिलती थी।

ठाकुर हनुमंत सिंह हाड़ा की माताजी के चौके की अनुभूति

ठाकुर हनुमंत सिंह हाड़ा की अनुभूति कथा ऐसी ही है। इसे उन्होंने ही गायत्री तपोभूमि के एक शिविर में अपने साथी शिविरार्थियों को सुनाया था। इस प्रसंग को बीते हुए आज 70 वर्ष के लगभग होने जा रहे हैं, पर जिन्होंने उन दिनों इसे सुना, उन्हें आज भी ये बातें यथावत याद हैं। ठा. हनुमंत सिंह राजस्थान के बाड़मेर के पास के रहने वाले थे। उनके पुरखे काफी बड़ी जागीर के स्वामी थे। स्वतंत्रता मिलने के बाद जागीरें तो न रहीं, पर उनके ऐश्वर्य में कोई विशेष कमी न आई थी। ठाकुर साहब में गुण काफी थे,पर दोष भी

कम न थे। ऐश्वर्य व विलासिताजन्य कई दुष्प्रवृत्तियां उनके व्यक्तित्व में बुरी तरह समा गई थीं। उनकी धर्मपत्नी, परिवार के सदस्य उनके इन दुर्गुणों, दुष्प्रवृत्तियों से बुरी तरह परेशान थे। पता नहीं किस तरह परिवार के लोगों को 'अखण्ड ज्योति' की एक प्रति हाथ लग गई। इसमें गायत्री तपोभूमि और यहां चलने वाले शिविरों के बारे में काफी कुछ छपा था। सारी बातें पढ़कर परिवार के सदस्यों एवं उनकी पत्नी ने सोचा कि ठाकुर साहब को वहां ले चला जाए। उन सब लोगों ने ठाकुर साहब से बात की। थोड़ी न-नुकुर के बाद वह तैयार हो गए।

जैसा खाए अन्न वैसा होवे मन

निश्चित तिथि पर वे सभी मथुरा स्थित गायत्री तपोभूमि पहुंच गए। उन दिनों आने वाले ठहरते तो गायत्री तपोभूमि में थे, पर खाना अखण्ड ज्योति संस्थान में खाते थे। इसी नियम के अनुसार ठाकुर साहब भी अपने परिवार के साथ भोजन हेतु अखण्ड ज्योति संस्थान में गए। माताजी ने स्वयं अपने हाथों से परोसकर उन्हें भोजन कराया। मुर्गा-मांस-शराब के अभ्यस्त ठाकुर साहब हालांकि इस तरह के भोजन के आदी न थे, फिर भी न जाने क्यों उन्हें इस

भोजन में कुछ अद्‌भुत स्वाद आया। भोजन करने के बाद वह फिर से तपोभूमि लौट आए। परिवार के सदस्यों के बहुत समझाने पर भी उन्होंने शिविर के किसी भी कार्यक्रम में भाग नहीं लिया। हां खाना खाने के लिए अवश्य सबके साथ माताजी के यहां पहुंच जाते थे। ठाकुर साहब के अनुसार,

“पता नहीं क्या था उस भोजन में! पर कुछ अद्‌भुत जरूर था। दो-तीन दिन में ही मुझमें एक अद्‌भुत भाव परिवर्तन हो गया। हर समय आंखों के सामने माताजी की सौम्य मूर्ति उपस्थित रहती। पहली बात तो है कि तो गलत विचार, गलत भावनाएं मन में अब आती ही नहीं , पर यदि पुरानी आदतोंवश आ भी जातीं, तो मन में बड़ी गहरी शर्मिंदगी होती । ऐसा लगता कि माताजी सब कुछ देख रही हैं और मैं कैसी घटिया बातें सोच रहा हूं। घर वापस पहुंचने के बाद पुरानी बातों की ओर मन बिल्कुल भी न गया। परंतु मित्र वही थे, उनकी जोर- जबरदस्ती भी वही थी। इसी जोर-जबरदस्ती के कारण उनके साथ जाना पड़ा। बहुत मना करने के बावजूद भी उन्होंने मांस और शराब का सेवन करा ही दिया। इसके बाद ही हालत खराब हो गई। उल्टी-दस्त का सिलसिला चल पड़ा। जैसे-

तैसे घर पहुंचाया गया लेकिन दिनोदिन बीमारी बढ़ती ही गई। दवा-डॉक्टर- इलाज सब बेअसर होने लगे।"

ठाकुर साहब के अनुसार घर के सभी लोग घबरा गए लेकिन उन्हें खुद एकदम घबराहट न थी। उन्हें हमेशा लगता कि माताजी उनके सिराहने बैठे उनका सिर सहला रही हैं और कह रही हैं,

“बेटा, इसे बीमारी नहीं, विरेचन (दस्त) समझ। इस बीमारी के द्वारा तेरे सारे पुराने कुसंस्कार धुल जाएंगे। अब तेरे अंदर वही रहेगा जो मैंने भोजन के साथ तुझे दिया है। तू परेशान न होना, सब कुछ बड़ी जल्दी ठीक हो जाएगा।”

सचमुच ऐसा ही हुआ। थोड़े ही दिनों में वह एकदम ठीक हो गए। ठीक होने के बाद उनका जीवनक्रम एकदम बदल गया। पुराने मित्रों का संग-साथ भी छूट गया। फिर से शिविर में गायत्री तपोभूमि आना हुआ। उन्होंने अपनी कथा विस्तार से सबको सुनाई। उनका बदला हुआ जीवनक्रम, कहे गए सत्य को प्रमाणित कर रहा था। नियमित ब्रह्ममुहूर्त में गायत्री साधना, प्रातः हवन, उनके जीवन के अनिवार्य अंग बन गए थे। माताजी द्वारा दिए गए

दिव्य संस्कारों ने उन्हें संपूर्ण रूप से बदल दिया था। अपनी अनुभूतियों को सुनाते हुए कहा करते थे,

"श्रेष्ठ साधकों के लिए मार्गदर्शक परमपूज्य गुरुदेव हैं। वे अवतारी सत्ता हैं, परंतु हम जैसे निकृष्ट जनों के लिए, अनेक तरह की गंदगी से लिपटी हुई संतानों के लिए तो माताजी ही सब कुछ हैं। उनके बिना भला हम जैसों का कल्याण और कौन करेगा? गुरु-मार्गदर्शक हमेशा साधक की पात्रता देखता है, पर मां के लिए तो बच्चे हमेशा ही सत्पात्र होते हैं, भले ही वे मल-मूत्र से सने क्यों न हों। मां को उन्हें गोद में उठाने, संस्कारवान बनाने में तनिक सी भी हिचकिचाहट नहीं होती। हालांकि इसके लिए उसे अपार प्राण ऊर्जा खरच करनी पड़ती है, अनेकों कष्ट सहन करने पड़ते हैं,माँ प्रसन्न भाव से यह सब करती है ।वंदनीय माता जी भी एक माँ की भांति अपनी आवश्यक शक्ति आराध्य की साधना-संगिनी होकर प्राप्त करती थीं।"

माताजी सच्चे अर्थों में अपने आराध्य की साधना-संगिनी थीं। परमपूज्य गुरुदेव उनके लिए गुरु, मार्गदर्शक, इष्ट, आराध्य सभी कुछ थे। उनका जीवन अपने आराध्य के श्रीचरणों में समर्पित

सुरभित पुष्प की भांति था। रोजमर्रा किए जाने वाले छोटे-बड़े हर क्रिया-कलाप के माध्यम से उनके प्राण अपने आराध्य महाप्राणों में समाहित होते रहते थे। बाहरी रूप से घर-परिवार, सगे-संबंधियों, अखण्ड ज्योति संस्थान व गायत्री तपोभूमि के अनेकों लौकिक दायित्व निभाते हुए भी उनका आंतरिक जीवन इस लौकिकता से पूरी तरह से अछूता, एकदम अलौकिक था। सांसारिक कर्त्तव्यों को मनोयोगपूर्वक पूरा करने का सार्थक प्रयास करते हुए भी उनकी आंतरिक भावनाओं में कहीं भी सांसारिक विषयों की लेशमात्र गंध नहीं थी।

अपनी सारे दिन की व्यस्तताओं से घिरी हुई वह स्वयं को मन-ही-मन रात्रि में की जाने वाली विशिष्ट साधना के लिए तैयार करती थीं। आगंतुकों के आवागमन, पत्रिका व अन्य साहित्य का प्रकाशन और गायत्री तपोभूमि के अनेकों क्रिया-कलापों की वजह से परमपूज्य गुरुदेव की व्यस्तताएं बहुत ज्यादा बढ़ गई थीं। माताजी की भी इसमें बराबर की सहभागिता थी, इसलिए प्रातः सूर्योदय से लेकर रात्रि के प्रथम पहर तक कोई भी समय ऐसा नहीं था, जिसमें साधना की जा सके। इसलिए गुरुदेव ने मध्य रात्रि से लेकर प्रातः तक के समय को साधना के लिए सुनिश्चित किया था। दिनभर के

क्रिया-कलापों को देखते हुए यही सबसे उपयुक्त समय था। हालांकि उन्हें सोने के लिए मुश्किल से तीन-चार घंटे मिल पाते थे, परंतु माताजी को अर्द्धरात्रि से कुछ पहले जगकर गुरुदेव के साथ बैठकर साधना करने में इतनी खुशी मिलती थी कि सारे कष्ट उनको नगण्य लगते थे। वह नियत समय पर जगकर स्नानादि से निवृत्त होकर पूजा की कोठरी में पहुंच जाती थीं। वहां गुरुदेव उनका पहले से इंतजार कर रहे होते। आसन पर बैठते ही आराध्य की कृपा उन पर अवतरित होने लगती । प्राण संचालन की अनेकों गुह्य क्रियाएं उनमें होने लगतीं। गोपनीय बीजमंत्रों के स्फोट से सूक्ष्म चेतना के दिव्य केंद्रों में शक्ति के सागर उमड़ने लगते। लेकिन ये तो प्रारंभिक क्षणों की बातें थीं, जिनका अनुभव पहले भी उन्हें किन्हीं अंशों में होता रहता था। गुरुदेव के साथ बिताए जाने वाले साधना के ये पल अति विशिष्ट थे। इन पलों में उन्हें उन सब सत्यों का साक्षात्कार होता था, जिसके बारे में शास्त्र केवल संकेत मात्र करते हैं, जिसकी विस्तृत चर्चा विश्व के किसी भी साधना शास्त्र में नहीं मिलती। यथार्थ साधना शास्त्रगम्य होती भी नहीं है। यह तो सर्वथा गुरुगम्य है। इस पर सदा गुरुगतप्राण शिष्यों का ही अधिकार होता

आया है। माताजी के अगाध समर्पण एवं परिपूर्ण निवेदन ने ही उन्हें इन सर्वथा गोपनीय योग साधनाओं का अधिकारी बनाया था।

नियमित योग साधना की प्रगाढ़ता और सघनता से उनका सूक्ष्म शरीर अति तेजस्वी एवं प्रचंड ऊर्जावान हो गया था। गुरुदेव द्वारा बताई गई योग की गुह्य विधियों से वे इसे बड़ी ही आसानी से स्थूलशरीर से पृथक कर लेती थीं। ऐसी दशा में गुरुदेव उनके स्थूल शरीर की रक्षा करते थे और वह लोक-लोकांतर में जाकर वहां से आवश्यक तत्त्वों का अर्जन कर लेतीं। शिष्यों-संतानों की पुकार का भी प्रत्युत्तर देतीं । गुरुदेव के सान्निध्य में योग साधना की तीव्रता के कारण उनके सूक्ष्मशरीर की क्रियाशीलता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। कारण शरीर भी प्रभावान और प्रखर होने लगा। उनकी साधना का घनत्व इस कदर बढ़ गया था कि वह प्रत्येक दृष्टि से परम समर्थ हो गई थीं।

यह स्थिति पहले से काफी अलग थी। इसे जानना-समझना किसी भी तरह से आसान नहीं है। जितना उन्होंने स्वयं विभिन्न प्रसंगों पर संकेत किए, उसके अनुसार अब गुरुदेव को उनके स्थूलशरीर की रक्षा करने के लिए रुकना नहीं पड़ता था। दिव्य महामंत्रों की कीलक शक्ति और उनकी महत् चेतना का संकल्प स्थूल देह की रक्षा

के लिए पर्याप्त था। गुरुदेव तो पहले से ही योग की समस्त उच्चतम साधनाओं में पारंगत थे। अब माताजी भी योग के उच्चतम रहस्यों से अवगत हो गईं। यह स्थिति यहां तक पहुंच गई कि स्थूल देह से किसी भी साधना की जरूरत नहीं रही। सूक्ष्म शरीर से स्वयमेव ही सारी योग विभूतियों का अर्जन होने लगा। यह विलक्षण स्थिति किन्हीं विरलें महायोगियों को ही सुलभ होती हैं।

इस परिवर्तित भावदशा में भी नियमित साधना के लिए जगने और बैठने का बाहरी क्रम यथावत् बना रहा, परंतु सभी आंतरिक सत्य बदल गए। वह गुरुदेव के साथ साधना के लिए अभी भी बैठती थीं । परंतु प्रायः किसी विशेष साधना के लिए नहीं, बल्कि उनके साधनात्मक कार्यों में सहभागी बनने के लिए। ऐसे कार्यों में शिष्यों-भक्तों की पीड़ा और उन पर आए संकटों का निवारण प्रमुख था। इसके लिए वे दोनों ही शिष्यों के पास पहुंचकर उन्हें आश्वासन देते, उनको ढांढस बंधाते और अपनी योगशक्ति से उनके कष्टों का पल में निवारण कर देते। संतानों की छटपटाती अंतर्चेतना अपनी महायोगिनी मां की कृपा को पाकर अपूर्ण शांति अनुभव करती।

साधना के क्षणों में ही जब-तब गुरुदेव के साथ सूक्ष्मशरीर से दिव्य लोकों, दिव्य भूमियों एवं सामान्य मानवदृष्टि से ओझल दिव्य

साधना केंद्रों की यात्रा करतीं। ऐसे प्रसंगों को उन्होंने संपूर्ण रूप से प्रायः कभी उजागर नहीं किया। फिर भी यदा-कदा गुरुदेव की महिमा बताने के लिए इसके कुछ अंशों को वह प्रकट कर देती थीं। ऐसे ही एक प्रसंग में उन्होंने बताया, “बेटा, तुम लोग जानते नहीं, गुरुदेव कौन हैं। उन्हें कभी सामान्य तपस्वी, सिद्ध और योगी समझने की भूल मत करना। वे मनुष्य देह में साक्षात् ईश्वर हैं। इस सचाई को मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा है। मेरी सूक्ष्म चेतना स्वयं इस सत्य की कई बार साक्षी बनी है। हिमालय के सिद्धगण, दिव्यलोकवासी तक उनकी एक झलक पाने के लिए तरसते हैं। जब कभी किसी विशेष अवसर पर वे उन लोगों के सामने होते हैं, तो वे सब उनके चरणों में फूल चढ़ाकर अपने को परम सौभाग्यशाली समझते हैं। इस सच्चाई को मैंने उनके साथ जाकर खुद देखा है।"

माताजी की इन बातों को सुनकर सुनने वाले भावविह्वल हो सोचने लगते, बच्चों को उनके पिता के स्वरूप का बोध भला मां के सिवा और कौन करा सकता है।

गुरुदेव के दिव्य स्वरूप का मुखर होकर बखान करने वाली माताजी अपने बारे में प्रायः मौन ही रहती थीं। किसी विशेष अवसर पर बहुत हुआ तो इतना कह देती थीं, अध्यात्म क्या कहने,

बताने की चीज है! यह तो अनुभव का विषय है। चाहे कितनी भी पोथियां लिखी व पढ़ी जाएं, पर इसकी सचाई को साधना की अनुभूतियों में ही जाना जा सकता है और यह सच्चाई ऐसी है कि कोई जानने वाला इसे कहे भी तो ऐसा लगेगा, जैसे किसी रहस्यपूर्ण उपन्यास की कथा सुनाई जा रही है, इसलिए समझदार लोग इन बातों को कहीं कहते नहीं। बहुत हुआ तो इसके तत्त्वदर्शन को बता देते हैं । सार बात भी वही है। इसे समझने पर सब समझ में आ जाता है।

अपनी बातों के क्रम में माताजी बताती हैं कि साधना के प्रसंग जितने गोपनीय रखे जाएं, उतना ही अच्छा है। चर्चा करने पर साधना का बल घटता है। ऐसा बताते हुए वह कहतीं,

"अब मेरी ही ले लो। मैंने क्या-क्या किया कोई कुछ जानता है क्या! अखण्ड ज्योति संस्थान में आधी रात से पहले उठ जाती थी । प्रायः सारी रात गुरुजी के साथ साधना में बिता देती, लेकिन घर के दूसरे लोगों के जागने से पहले उठ जाती और बाद में उनके उठने पर फिर से स्नान करती। इस स्नान से रात भर की गई साधना के कारण बढ़ा हुआ ताप शांत हो जाता और सभी यही सोचते कि ये तो अभी जगी हैं और अब इतनी देर से नहा रही हैं। ज्यादा कुछ पूछने पर मैं

भी उनकी हां में हां मिला देती, पर असली बात दूसरी थी। उन दिनों गुरुदेव के साथ मैं पूरी प्रगाढ़ता, तन्मयता एवं तत्परता के साथ साधना किया करती थी। वे बड़े अद्भुत दिन थे। शरीर इस लोक में रहते हुए भी चेतना कहीं और ही रहती थी। मेरा सब कुछ गुरुजी में घुलता मिलता चला जा रहा था।”

उनकी इन बातों को सुनते हुए सुनने वालों की भावानुभूतियों में शिव और शक्ति के अंतर्मिलन का सत्य उजागर होने लगता।